स्कूलों के निजीकरण में गलत क्या है ?

हैरी ब्रिजहाउस

हैरी ब्रिजहाउस अपने अन्य लेख 'स्कूल के विकल्प और शैक्षिक समानता' में कहते हैं कि 'सामाजिक संस्थाओं के लिए न्याय सर्वोपरि मूल्य है और उन संस्थाओं के लिए भी जो बच्चों की शिक्षा को नियंत्रित करती हैं।' इस लेख में भी सामाजिक समानता और न्याय को केन्द्र में रखते हुए वे स्कूलों के निजीकरण का विरोध करते हैं। इसी लेख में वे आगे कहते हैं कि, 'शिक्षा नीतियों को सामाजिक नीतियों की तरह ही सामान्यतः और सिद्धान्ततः न्याय की धारणा से निर्धारित होना चाहिए।'

स्कूलों के निजीकरण का मतलब है कि राज्य स्कूलों को आर्थिक और व्यवस्थागत मदद उपलब्ध कराने से पीछे हट जाए। हैरी ब्रिजहाउस मानते हैं कि स्कूलों का निजीकरण सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय के हालात को और बदतर बनाएगा। वे कहते हैं कि निजीकरण के समर्थक राज्य की अपेक्षा बाजार के प्रति ज्यादा आशावादी हैं जो अपना ध्यान सामाजिक हित के बजाए पूर्णतः लाभ पर केन्द्रित रखता है। इस लेख में वे स्कूलों के निजीकरण के मुख्य पैरोकार जेम्स टूली द्वारा निजीकरण के पक्ष में दिए तर्कों का जवाब देते हैं।

आज यह बहस वैश्वीकरण और उदारीकरण के नाम पर विकासशील कहे जाने वाले देशों और भारत में भी जोर-शोर से चल रही है। स्कूलों के निजीकरण के पक्ष में अप्रभावी हो चुकी राजकीय शिक्षा प्रणाली और माता-पिता के लिए बेहतर स्कूल के चयन के विकल्प उपलब्ध कराने के अधिकार को मुख्य आधार बताया जाता है। भारत में स्कूलों के निजीकरण की बहस को योजना आयोग ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में वाउचर प्रणाली की वकालत करते हुए हवा दी है और निजीकरण के पक्ष में अपनी राय प्रकट की है।

लेखक परिचय :

अमेरिका के विसकॉन्सिन विश्वविद्यालय में शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा नीति अध्ययन के प्रोफेसर।

पुस्तक : 'स्कूल चॉइस एण्ड सोश्यल जस्टिस', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 'जस्टिस' एवं 'ऑन एज्युकेशन'

सम्पर्क :

5119 Helen C White Hall, 600 N Park St, Madison, WI 53706, USA

इंग्लैण्ड की स्कूली व्यवस्था में बाजार और छद्म बाजार तंत्र की उपस्थिति को लेकर मेरी आलोचना का जवाब देते हुए जेम्स टूली (2003) कहते हैं कि यथास्थिति के खिलाफ यह विचार कितने ही सफल क्यों न हों, लेकिन उनके द्वारा कथित *निजी विकल्प* की नीति के विरोध में यह विचार सफल नहीं हैं, जबकि मैं इसे पूर्ण निजीकरण कहना चाहूंगा, क्योंकि इसके तहत शिक्षा प्रदान करने, उसके संचालन और उसके वित्त पोषण से राज्य पूर्णतः पीछे हट जाता है। उनका लेख मेरे विचारों के खिलाफ ऐसे तर्क प्रस्तुत करता है जो यह साबित करने की कोशिश करते नजर आते हैं कि वे विचार कितने ही तर्कसंगत क्यों न हों, उनका इस्तेमाल निजी विकल्प के पक्ष में किया जा सकता है। इसके जवाब में मैं अपनी बात को उन मुद्दों तक सीमित रखना चाहूंगा जिन्हें हम सामान्यतः अनिवार्य शिक्षा से जुड़े मानते हैं, लेकिन निश्चय ही जो पूर्ण निजीकरण की नीति के तहत अनिवार्य नहीं रह जाएंगे,

जैसे कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा। इस तरह की प्रतिक्रिया के पीछे मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि स्कूल के चयन के लिए कुछ हद तक समर्थक कारणों पर सहमति के बावजूद टूली निजीकरण का पूर्ण समर्थन कर गलती कर रहे हैं।

1. निजीकरण और उपयुक्तता का सिद्धांत

मैं टूली की तरह निजीकरण की वितरणात्मक आपत्तियों पर चर्चा को केंद्रित करूंगा। न्याय की आवश्यकता है कि प्रतिस्पर्द्धा में सामाजिक सहयोग को बनाए रखने के लिए बच्चों का भविष्य उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा, माता-पिता की सम्पन्नता और संसाधनों पर ही पूर्णतः निर्भर नहीं *होना चाहिए*। स्कूल का विकल्प और सामाजिक न्याय (2001) में मैंने इस सिद्धांत का खुलासा करते हुए काफी विस्तार के साथ शैक्षिक समानता का अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्वपूर्ण सिद्धांत स्थापित किया है, जिसमें यह कहा गया है कि बच्चों के भविष्य की निर्भरता माता-पिता की सम्पन्नता और उनके संसाधनों पर जितनी हो सके उतनी कम से कम होनी चाहिए। इसके सामने पहले बताया गया सिद्धांत बहुत कमजोर है। इसीलिए हम सब को चाहिए कि हम निजीकरण को गलत बताने वाले दावे का समर्थन करें। टूली स्वयं भी कई बार इस सिद्धांत का पक्ष लेते हैं कि जिसे हम 'उपयुक्तता का सिद्धांत' कहेंगे। वे कहते हैं कि सभी को इतनी पर्याप्त बेहतर शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है जो उन्हें वयस्क व्यक्ति के रूप में अर्थव्यवस्था में अपनी उपयुक्त भूमिका के निर्वाह में मदद करे (टूली, 1995)।

अर्थव्यवस्था में 'उपयुक्त भूमिका का निर्वाह' किसे माना जाएगा और टूली के उपयुक्तता के सिद्धांत के पक्ष में दिए गए तर्कों में निहित समस्याओं जैसे सवालों को एक तरफ छोड़ दें (ब्रिजहाउस, 1998)। और यह भी मान लें कि टूली की यह अटकलें आनुभविक रूप से सत्य भी साबित होती हों कि एक पूर्णतः निजीकृत व्यवस्था में सभी बच्चों पर, वास्तव में उनकी शिक्षा पर पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए जाते हैं। तब भी महज उपयुक्तता के सिद्धांत की पूर्ति निजीकरण को सही ठहराने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है। न्याय की मांग यह है कि उपयुक्तता के सिद्धांत की तो पूर्ति हो ही, लेकिन महज इसकी पूर्ति हो जाना भर पर्याप्त नहीं है बल्कि इसकी पूर्ति तो सुनिश्चित होनी ही चाहिए। इसके पीछे निगरानी के लिए राज्य को हमेशा दखल के लिए तत्पर भूमिका में खड़े रहना होगा ताकि कोई भी बच्चा या बच्चे अपेक्षित उपयुक्त शिक्षा को प्राप्त करने से किसी भी रूप में वंचित रहते हैं तो राज्य न्याय को सुनिश्चित करने वाली अंतिम एजेंसी के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सके। किसी भी न्यायपूर्ण समाज में राज्य की यही भूमिका है (और अन्यायपूर्ण समाज में भी यही उसकी भूमिका है।)।

बच्चों की शिक्षा को ध्यान में रखते हुए न्याय की मांग क्या है इस बारे में टूली आमतौर पर मौन हैं। यहां तक कि वे उपयुक्तता के सिद्धांत का समर्थन करते हुए भी काफी रियायत बरतते हैं और महज तर्क करने की गरज से ही उसे गढ़ते हैं। लेकिन जब तक न्याय की मांग यह कहती है कि बच्चों की शिक्षा को पूर्णतः माता-पिता के संसाधनों पर निर्भर नहीं होना चाहिए तब तक यह अनुभवसिद्ध सवाल भी अपनी जगह बना रहेगा कि क्या निजीकरण न्याय की इस मांग को पूरा करने में सरकारी संलग्नता वाली किसी व्यवस्था की तुलना में ज्यादा सफल हो सकता है, और राज्य को हमेशा इस बात के लिए तैयार रहना होगा कि यदि पूर्णतः निजीकृत व्यवस्था विफल होती है तो वह न्याय की मांग को पूरा करने की अपनी भूमिका में आ सके।

जैसा कि टूली बार-बार जोर देकर कहते रहते हैं कि शिक्षा में राज्य की भूमिका वाली मौजूदा व्यवस्था की तुलना में कुछ हद तक पूर्ण निजीकरण न्याय की मांग को पूरा करने में ज्यादा कारगर साबित हो सकता है, उसे स्वीकारने के बावजूद राज्य की उपरोक्त भूमिका की आवश्यकता भी निरंतर बनी रहती है। मैं उस स्थिति को देखना चाहूंगा जब कोई इस बात को साबित कर सके कि अमरीका में पूर्ण निजीकरण वर्तमान स्थिति की तुलना में शिक्षा में न्याय की मांग की पूर्ति ज्यादा बेहतर ढंग से कर पा रहा हो। शिक्षा में समानता को लेकर मेरे दृढ़ सिद्धांतों पर शायद उसका कोई असर हो सके, और मैं यह उम्मीद करूंगा कि यही बात सर्वाधिक भ्रष्ट और अत्यधिक गरीब राज्यों पर भी समान रूप से लागू हो सकती होगी। लेकिन जब इस बात के पक्ष में तर्क दिया जा रहा हो तब वह तमाम उपलब्ध विकल्पों में बेहतरीन संभव की तर्ज पर तर्क नहीं दिया जा रहा होगा, क्योंकि मौजूद हालात में पूर्णतः सही साबित होने के लिए उस तर्क को इस तर्ज से हटना ही होगा। इस पत्र का उद्देश्य यह साबित करना नहीं है कि पूर्ण निजीकरण को कभी न्यायसंगत ठहराया ही नहीं जा सकता; बल्कि यह बताना है कि सर्वाधिक वास्तविक स्थितियों में न सही तब भी ज्यादातर स्थितियों में, खासतौर से विकासशील देशों में यह व्यवस्था न्याय संगत नहीं ठहराई जा सकती।

इस तर्क को लेकर अब तक एक एतराज दर्ज कराया जाता रहा है। आपको लग सकता है कि मैं निजीकरण को लेकर अपनी व्याख्या में अतिवादी हो रहा हूं। मेरा कहना है कि न्यायपूर्ण राज्य को अपनी भूमिका के निर्वाह के लिए तत्पर रहना चाहिए, और इसमें यह अंतर्निहित है कि निजीकरण की स्थिति में बेशक राज्य को स्वयं शिक्षा में सक्रिय भूमिका निभानी न पड़े, लेकिन इसे व्यवस्था

की निगरानी की अपनी भूमिका से पीछे नहीं हटना चाहिए। हालांकि टूली कह सकते हैं कि यह अपेक्षा करना बहुत ज्यादा है। वे राज्य की निगरानी की भूमिका या निरपेक्ष दर्शक की भूमिका को स्वीकार भी कर लें तो भी वे इस बात पर जोर देंगे कि सामान्य स्थिति में स्कूलों के वित्त पोषण या नियमन में राज्य की भूमिका नहीं होनी चाहिए। पूर्ण निजीकरण की इस बात को चुनौती देने और हमें महज उपयुक्तता के सिद्धांत की बजाय न्याय के ज्यादा सशक्त सिद्धांत को अपनाने की आवश्यकता है, और सहूलियत के लिए नमूने के तौर पर मैं शैक्षिक समानता कि सिद्धांत को अपनाता हूं जो यह मांग करता है कि बच्चे के भविष्य का निर्धारण माता-पिता की संपन्नता और संसाधनों की उपलब्धता से पूर्णतः मुक्त होना चाहिए, हालांकि मेरा यह मानना है कि यह व्यवस्था उपयुक्तता के सिद्धांत की बजाय किसी भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण सिद्धांत के साथ काफी आराम के साथ चलाई जा सकती है।

यह ध्यान में रखते हुए कि टूली का दावा राज्य की क्षमता पर निराधार संदेह पर आधारित है। मैं कुछ देर के लिए इस बात का पता लगाने की कोशिश करूंगा कि इस बात में कितना सच है ताकि हमारे बीच असहमति का स्तर स्पष्ट हो सके। टूली का मानना है कि राज्य वस्तुतः इन वस्तुओं को उपलब्ध कराने वाला अक्षम प्रदाता है, और उनकी यह मान्यता राजनीति के सार्वजनिक आर्थिक विकल्प विश्लेषण के प्रति प्रतिबद्धता में अंतर्निहित है। सार्वजनिक विकल्प का सिद्धांत राजनीति को एक ऐसी किराए की गतिविधि के अवसर के रूप में देखता है और पुनर्वितरण की गतिविधियों में संलग्न होने वाले राज्यों को अक्षम बताता है और उनकी बाजार की प्रक्रिया को विकृत करने के लिए उनकी आलोचना करता है (बुचानन एवं तुलोख, 1962; डाउंस, 1957)। टूली सार्वजनिक विकल्प के सिद्धांत को 'मध्यम वर्ग की जकड़ की समस्या' से जोड़ते हुए कहते हैं :

'दुनियाभर में विकसित ही नहीं तमाम विकासशील देशों के - अनुभव आधारित साक्ष्य यह साबित करते हैं कि शिक्षा के सार्वजनिक वित्त पोषण में असमानता व्याप्त है। सच तो यह है कि मध्यम वर्ग हमेशा से गरीबों की तुलना में सार्वजनिक शिक्षा का ज्यादा फायदा उठाता रहा है। बड़ी तादाद में ऐसा साहित्य उपलब्ध है जो 'जनकल्याण का मध्यम वर्ग द्वारा फायदा उठाए जाने' की समस्या की ओर इशारा करता है और जो यह बताता है कि यदि सबको समान स्तर पर शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है तो निश्चय ही वंचित वर्गों की तुलना में मध्यम वर्ग उसका अधिक फायदा उठाएगा (टूली, 2003, पृ. 436)।'

टूली सबको समान स्तर पर प्रभावी और सक्षम सार्वजनिक शिक्षा उपलब्ध कराने में कुछ राज्यों के नाकाम रहने की ओर भी इशारा करते हैं। उनका पसंदीदा उदाहरण भारत का है, जहां सस्ते निजी स्कूलों के रूप में बाजार का उभार सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था की विफलता का नतीजा है, लेकिन विकासशील देशों में दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, पेरू, रोमानिया आदि के उदाहरण भी हैं (टूली, 2000)। भारत में स्कूली शिक्षा को लेकर पिछले दिनों *भारत में प्राथमिक शिक्षा पर सार्वजनिक रिपोर्ट* 'प्रोब रिपोर्ट' (डे, द्रेज, 1999) और इस रिपोर्ट में सरकारी और निजी स्कूलों के बीच की गई तुलना के संबंध में एक पर्चे में टूली यह अपील करते हैं कि भारत (और अन्य देशों) को नियमों में ढील देनी चाहिए और सरकारी स्कूलों द्वारा छोड़ी जा रही कमियों को पूरा करने के लिए निजी स्कूलों को आगे आने का अवसर देने के लिए वाउचर व्यवस्था शुरू कर देनी चाहिए (टूली, 2000, पृ. 25)। वे कहते हैं कि प्रोब रिपोर्ट 'उन निजी स्कूलों की ओर इशारा करती है जो गरीबों को शिक्षा प्रदान कराते हैं और ..... (मनमानापन और संसाधनों का कम इस्तेमाल इत्यादि) जैसी समस्याएं इन स्कूलों में देखने में नहीं आईं' (टूली, 2000, पृ. 25)। वे इस पर्चे में गीता किंगडोम के उस विश्लेषण का हवाला देते हैं जिसमें उत्तर प्रदेश में सरकारी स्कूलों की तुलना में निजी स्कूलों के ज्यादा कुशलतापूर्वक संचालन की पुष्टि की गई हैः जिसमें कहा गया है कि यह स्कूल कम लागत में बेहतर नतीजे देते हैं (किंगडम, 1996)। कुछ लोग इस आधार पर यह कह सकते हैं कि यह विश्लेषण और अधिक निजीकरण की तरफदारी करता है (हालांकि स्वयं किंगडम इससे स्पष्ट इनकार करती हैं, और मेरी राय में वे उचित ही ऐसा करती हैं।)।

मध्यम वर्ग की जकड़ के दावों का आकलन करते हुए हमें उस आधार रेखा के बारे में स्पष्ट होना होगा, जिसके आधार पर इस जकड़ को मापा जा रहा है। ली ग्रांड (1982) जैसे विश्लेषणकर्ता द्वारा स्थापित दावे समान प्रावधानों के संबंध में हैं। जिसके अनुसार, अनेक सरकारी कार्यक्रमों के बारे में यह सच है कि, अपनी संगठित गुटबाजी की ताकत और 'तंत्र के इस्तेमाल' की व्यक्तिगत क्षमता के चलते मध्यम वर्ग सरकार द्वारा मिलने वाली सुविधाओं का कामगारों की तुलना में अधिक फायदा उठा पाता है; जिसका आशय यह हुआ कि वे समान से अधिक हिस्सा प्राप्त करते हैं। लेकिन इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार कामगार लोगों को उतना भी फायदा पहुंचाने में नाकाम रही है जितना पुनर्वितरण की किसी व्यवस्था के अभाव में उन लोगों को मिल सकता था। यह संभव है कि कामगार तबकों को समानता के अधिकार के तहत जितना लाभ मिलना चाहिए, उतना नहीं मिल पाता हो फिर भी यह फायदा उससे अधिक है जो सरकार के इन प्रावधानों में शामिल न होने या पूर्ण निजीकरण की स्थिति में इन लोगों को मिल पाता।

मेरा मानना है कि निश्चय ही अधिकांश विकसित देशों में शिक्षा के संदर्भ में यही स्थिति है। सरकार मध्यम वर्ग के बच्चों के लिए कामगार तबकों के बच्चों की तुलना में ज्यादा संसाधन आवंटित करती है, लेकिन क्योंकि यह वर्ग बढ़े हुए करों के रूप में सरकार को कुछ भुगतान भी करता है इस तरह, उस स्थिति में जबकि सरकार कुछ नहीं कर रही होती, की तुलना में कामगार तबके के बच्चे मध्यम वर्ग के बच्चों से कहीं अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। मैंने *अधिकांश* विकसित देश कहा क्योंकि हालांकि मैंने कोई गणना नहीं की है और मुझे नहीं मालूम की इस काम के लिए किस तरह की गणना की जा सकती है, फिर भी मैं यह मानना चाहता हूं कि अमरीका इस बारे में एक अपवाद ही होगा क्योंकि यहां अन्य विकसित देशों की तुलना में एक कम प्रगतिशील कर व्यवस्था और स्कूलों को वित्त पोषित करने की प्रणाली ज्यादा असमानतावादी है।

टूली की ही तरह सार्वजनिक विकल्प विश्लेषण अक्सर मुझे भी प्रभावित करता है और अपूर्ण ही सही उपयोगी भी नजर आता है; और मेरा मानना है कि शिक्षा पर अत्यधिक वामपंथी चिंतन उन संकल्पनाओं की संभावना को खारिज कर देता है जिन पर सार्वजनिक विकल्प बहुत जोर देता है। लेकिन, यदि सार्वजनिक विकल्प विश्लेषण को वामपक्ष पूर्णतः खारिज करता नजर आता है तो दक्षिणपंथी (जिनमें टूली भी शामिल हैं) इसके प्रति अत्यधिक आग्रहशील नजर आते हैं। कल्याणकारी राज्य के सार्वजनिक प्रावधानों की आलोचना में सार्वजनिक विकल्प द्वारा प्रस्तुत आलोचना में कुछ दम है, लेकिन अपनी क्रियान्विति में यह बहुत सीमित है। यह महज एक संयोग नहीं है कि सार्वजनिक विकल्प विश्लेषण का विचार अमरीका में पनपा, जहां एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसे संभवतः इसी इरादे के साथ विकसित किया गया है जो राज्य को फायदा उठाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले तंत्र के रूप में इस्तेमाल किए जाने की छूट देती है। कांग्रेस के सदस्यों में बहुत सारी शक्तियां निहित हैं और यह उम्मीद की जाती है कि यह सदस्य अपने-अपने जिलों के सर्वाधिक सम्पन्न व्यक्तियों में से हों जो इन लोगों (और इस तरह अपने जिले के लिए) संघीय सरकार से ज्यादा से ज्यादा फायदा लेने की स्थिति में हों। क्योंकि राज्य राजनीतिक दलों में हस्तक्षेप कर सकता है - जैसे कि उन्हें अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार देने से इनकार कर सकता है या मताधिकार प्रदान करने के लिए गैर-वाजिब शर्तें लगा सकता है - इसलिए राजनीतिक दल बहुत शक्तिहीन हैं और नीति निर्धारण में उनका दखल बहुत थोड़ा ही हो पाता है। ऐसे में वोटों की खरीद-फरोख्त कर राजनीति को बल मिलता है, खासतौर से उन स्थितियों में जबकि विधायिका और कार्यपालिका दोनों में किसी एक गठबंधन का बहुमत न हो। ऐसे हालात में आपको एंथनी डाउंस की कही सब बातें सच होती नजर आती हैं (डाउंस, 1957)। इसके विपरीत ब्रिटेन, स्वीडन और फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्थाओं से लाभ ले पाना काफी कठिन है।

अपनी नीतियों में समानता के लिहाज से राज्यों में पर्याप्त परस्पर भिन्नता होती है, इसके अलावा कुछ हद तक अपने उद्देश्यों और सामर्थ्य के लिहाज से भी प्रत्येक राज्य दूसरे राज्यों से पर्याप्त भिन्नता लिए होता है। यहां मैं दो तुलनाएं प्रस्तुत करूंगा। पहले, स्वीडन और ब्रिटेन में दूसरे विश्व युद्ध के बाद आजमाए गए विभिन्न तरीकों को देखें। दोनों देशों ने मोटे तौर पर सामाजिक-लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आम सहमति बनाई लेकिन स्वीडन ने ज्यादा समानतापूर्ण परिस्थितियों का निर्माण किया, और पुनर्वितरण के लिए ऐसे संस्थानों का गठन किया जो पिछले दो दशकों में नव-उदारवादी ताकतों के हमलों के मुकाबले ज्यादा मजबूती के साथ टिकी हुई हैं। इस फर्क का कारण, जैसा कि मैं समझ पाता हूं वह संबंधित सामाजिक लोकतांत्रिक दलों की विविधतापूर्ण क्षमताओं में निहित है। खासतौर से, स्वीडन के समानतावादी व्यवस्था प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करने (और संभवतः आर्थिक विकास पर विध्वंसक परिणामों को रोकने में भी सफलता प्राप्त करने के पीछे) महत्त्वपूर्ण भूमिका सरकार द्वारा व्यक्तिगत आर्थिक उत्पादकता को बढ़ावा देने के नाम पर निहित स्वार्थों और उनसे जुड़े खतरों को दूर रखने की रही। सार्वजनिक हित के साथ अच्छी बात यह है कि वे निहित स्वार्थों की तुलना में ज्यादा समानतावादी होते हैं (क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से कम असहाय होते हैं) और वे ज्यादा कारगर भी होते हैं (एस्पिंग एंडरसन, 1986; सास्सून,1996)। दूसरे नीदरलैंड और जर्मनी की तुलना अमेरिका से करते हैंः इन दोनों ने भी अमरीका की तुलना में स्थितियों में ज्यादा समानता अर्जित की है, और इन दोनों ही देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पादकता में प्रकट रूप में किसी तरह की कमी आने दिए बिना इसे अर्जित किया है (गूडिन, 1999)। लेकिन अमरीकी सरकार ने स्थितियों में समानता या ऐसा कुछ भी अर्जित करने की दिशा में प्रयास नहीं किया, बल्कि उसने जान-बूझ कर गैर समानतावादी परिणामों को बढ़ावा दिया, जिन्हें यह स्वस्थ आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य समझती है (जो जाहिर है कि गलत है)। इन दोनों स्थितियों के बीच अंतर के मूल में राजनीतिक इच्छाशक्ति को देखा जा सकता है।

चलिए, एक बार फिर भारत के बारे में बात करते हैं, जहां आंतरिक स्तर पर विविधता के सिद्धांत के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। हालांकि समूचे भारत में साक्षरता दर बहुत कम है, लेकिन कुछ राज्यों में अपेक्षाकृत साक्षरता दर बहुत ज्यादा भी है। उदाहरण के लिए केरल को ही लें, यह अपेक्षाकृत गरीब राज्य है, लेकिन वहां की

वयस्क साक्षरता दर बहुत ऊंची है, साथ ही साथ स्वास्थ्य की सारणी में भी विविध पैमानों पर राज्य बेहतर प्रदर्शन कर रहा है (सेन, 1999)। प्रोब रिपोर्ट के लेखकों ने जानबूझ कर उन राज्यों को चुना जहां वे जानते थे कि सरकारी स्कूलों के साथ गंभीर समस्याएं मौजूद हैं और उन राज्यों में निजी स्कूलों के अपेक्षाकृत ज्यादा सफल रहने की अपेक्षा की जा सकती है। लेकिन उदाहरण के रूप में कुछ निजी स्कूलों के उदाहरणों को यहां-वहां से उठाने के आधार पर निजी स्कूलों को प्रोत्साहन की किसी व्यापक स्तरीय नीति की पुष्टि नहीं होती है और निश्चय ही इससे नियमों में ढील देने की बात का भी समर्थन नहीं होता है, जैसा कि टूली कहते हैं (टूली, 2000; पृ. 25), हालांकि यह नियमों में सुधार का समर्थन कर सकती है तो वह अलग बात है। यहां चार कारणों की चर्चा करेंगे जो निजी स्कूलों को प्रोत्साहन को समर्थन के निष्कर्ष तक पहुंचने से रोकते हैं।

पहला, कितनी भी तादाद में उदाहरण जुटा लिए जाएं, लेकिन उनके आधार पर निजी स्कूलों के पक्ष में कोई सामान्यीकृत दावा नहीं किया जा सकता। जैसे वाम पक्ष निजीकरण के तमाम भयावह उदाहरणों की चर्चा करने के बावजूद उसके खिलाफ कोई सामान्यीकृत मामला नहीं बना पाता है, उसी तरह दक्षिणपंथ इसकी सफलता की तमाम कथाओं के बावजूद इसके पक्ष में कोई सामान्यीकृत तर्क नहीं बना पाता है। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड में स्कूल के संदर्भ में लाभ के लिए के व्यापक इस्तेमाल से लागत बढ़ने की उम्मीद की जा सकती है, फिर भी उनका सामरिक और न्यूनतम उपयोग लागत को बिल्कुल भी नहीं बढ़ाता (इसके प्रमाण के लिए देखें ब्रिजहाउस, 2003; क्रॉच, 2006 भी देखें)। इसी तरह इंग्लैण्ड के रोमन कैथोलिक और चर्च के स्कूल लागत की दृष्टि से अन्य स्कूलों की तुलना में ज्यादा प्रभावी हैं। यह स्कूल स्वैच्छिक मानव पूंजी की सीमित आपूर्ति से प्रेरित होते हैं जो पहले ही समाप्ति की ओर होता है। क्योंकि यह स्कूल लागत की दृष्टि से ज्यादा प्रभावी हैं इसलिए इनके विस्तार को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

दूसरे, प्रभावी ढंग से काम करने के लिए निजी बाजारों को अच्छी तरह के काम कर रहे राज्यों की जरूरत होती है। मैं तीसरे खंड में इस विषय की ओर लौटूंगा, लेकिन इंग्लैण्ड और अमेरिका में इसे भुलाना आसान है, जहां न्यास विरोधी नियम ज्यादा मजबूत हैं; कॉपीराइट और पेटेंट के कानून ज्यादा सुनियोजित ढंग से बनाए गए और लागू किए गए हैं; राजनीतिक आजादी आवश्यक सूचनाएं बाजार को उपलब्ध कराते रहना सुनिश्चित करती है; आधारभूत स्वास्थ्य और सुरक्षा के कानून हैं; और पुलिस तथा अन्य सरकारी अधिकारी भ्रष्ट नहीं हैं। रूस, जिम्बाब्वे और दक्षिण अफ्रीका में इन्हें नहीं भुलाया जा सकता। इसलिए सरकारी स्कूलों का विरोध करने वाले राज्य के जितना सक्षम और कार्यकुशल होने की अपेक्षा रखते हैं निजी स्कूलों की जरूरतों को पूरा करने के लिए भी राज्य को उससे कहीं ज्यादा सक्षम और कार्य कुशल होने की आवश्यकता होती है।

तीसरा, विभिन्न राज्यों की कार्य कुशलता में फर्क होता है, यह फर्क ढांचागत भी होता है और राजनीतिक इच्छाशक्ति की दृष्टि से भी होता है। भारत में सामान्यतः विभिन्न राज्यों की साक्षरता दर और स्वास्थ्य दर में पर्याप्त भिन्नता है और यहां तक कि आर्थिक स्थितियों के आधार में भी इस भिन्नता को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। केरल में महिला और पुरुष दोनों की साक्षरता दर पश्चिम के किसी भी लोकतांत्रिक देश से बहुत कम नहीं है। यह दीर्घकालीन राजनीतिक इच्छाशक्ति को प्रकट करता है, राज्य के अंतर्निहित गठन को नहीं, जो कमोबेश भारत के अन्य राज्यों से बहुत भिन्न नहीं है। दुनिया के तमाम विकासशील देशों की तुलना में यह देखना आश्चर्यजनक है कि अपनी तमाम खामियों के बावजूद क्यूबा की सरकार ने अपने नागरिकों को बेहतर उच्च शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने में जबरदस्त सफलता प्राप्त की है, जबकि वहां हालात अत्यधिक तनावपूर्ण हैं।

चौथा, प्रोब रिपोर्ट में जिन निजी स्कूलों की जांच की गई है वे अपेक्षाकृत कम लागत वाले स्कूल थे, फिर भी वे अधिकांश गरीब बच्चों को शिक्षा देने में समर्थ नहीं हैं: 'अपने बच्चों को निजी स्कूलों में शिक्षा दिला पाना अधिकांश गरीब माता-पिताओं की पहुंच से बाहर ही रहता है' (डे, द्रेज, 1999, पृ. 105); और हालांकि इन निजी स्कूलों में लगभग आधे बच्चे अनुसूचित जातियों या अन्य पिछड़े वर्गों से आते हैं, लेकिन अक्सर यह परिवार अपने बच्चों में से किसी एक को ही और खासतौर से लड़कों को ही निजी स्कूलों में भेजते हैं (पृ. 103)। इतना ही नहीं, जहां भी गरीब लोगों की पहुंच निजी स्कूलों तक है वहां भी यह प्राथमिक स्कूल के स्तर तक ही सीमित है: माध्यमिक स्कूलों की संख्या उनकी तुलना में बहुत कम होती है और अपेक्षाकृत पर्याप्त महंगे भी होते हैं और इन स्कूलों में आने वाले बच्चे सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से कहीं सम्पन्न पृष्ठभूमि से आते हैं। यह सही है कि निजी स्कूलों को अनुदान मिलता है ताकि वे ज्यादा गरीब बच्चों को शामिल करें, लेकिन यह स्कूल ऐसा कोई इरादा नहीं रखते। जो माता-पिता अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने के लिए पैसा देते हैं उन्हें संभवतः यह जान कर खुशी होगी कि वे स्कूलों में काबिल गरीब बच्चों की उपस्थिति में सहायता कर रहे हैं, जो खुद उनके बच्चों के सीखने में मददगार हो सकते हैं, लेकिन वे उन जरूरतमंद बच्चों के लिए उपचारात्मक शिक्षा में क्या मदद करना चाहेंगे। न ही निजी क्षेत्र इसके पीछे के कारण को समझ

सकता है कि कोई माता-पिता अपनी बेटी की शिक्षा पर पैसा लगाने को तैयार नहीं है (क्योंकि अक्सर वे इस शिक्षा से कोई फायदा नहीं देख पाते) या फिर उन्हें अपने बच्चों को बहुत कम उम्र से ही श्रम बाजार में खड़ा करना पड़ता है (ताकि वे परिवार की आमदनी में मदद कर सकें।)। सिर्फ राज्य ही असमानता के इन स्रोतों का मुकाबला कर सकता है, वही बाल श्रम को रोक सकता है या फिर बालिकाओं की शिक्षा के लिए परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान कर सकता है (देखें किंगडम, 1998)।

इतना ही नहीं अपेक्षाकृत बेहतर स्थितियों में रहने वाले गरीब बच्चों की निजी स्कूलों में आंशिक भागीदारी निश्चय ही यथास्थिति (केवल असमान और खराब सरकारी स्कूलों) की तुलना में कुछ हद तक तो शैक्षिक समानता का प्रतिनिधित्व करती ही है, क्योंकि वे अपेक्षाकृत बेहतर स्थितियों में भले ही रहते हों, लेकिन पूर्ण विशेषाधिकार भी उन्हें प्राप्त नहीं हैं। लेकिन शैक्षिक समानता को प्राप्त करने के उद्देश्य से विकसित की गई दीर्घकालीन रणनीति ऐसी व्यवस्था के साथ संतुष्ट नहीं हो सकती जो सबको शिक्षा सुनिश्चित करने की बजाय गरीबों (जिनमें सभी लड़कियां भी शामिल हैं) में से महज कुछ को ही शिक्षा देती हो। और जैसा कि प्रोब रिपोर्ट आगाह करती है 'निजी स्कूलों के विस्तार में सरकारी स्कूली व्यवस्था को कम करके आंके जाने का खतरा निहित है। जब अपेक्षाकृत विशेषाधिकार प्राप्त पृष्ठभूमि वाले माता-पिता अपने बच्चों को इस लिए सरकारी स्कूलों से निकाल लेते हैं ताकि उन्हें निजी स्कूलों में प्रवेश दिलाया जा सके, तब सरकारी स्कूलों में सुधार के लिए माता-पिता की तरफ से आने वाला दबाव कम होता चला जाता है' (डे, द्रेज, 1999, पृ. 106)।

2. शैक्षिक समानता की समस्या

उपरोक्त तर्क में शैक्षिक समानता के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया है, इसलिए इस सिद्धांत की आलोचना में टूली क्या कहते हैं यह देखना उचित होगा। वास्तव में टूली इस सिद्धांत और इसके क्रियान्वयन से संबंधित मेरे प्रस्तावों के बीच में से किसकी आलोचना की जाए इसे लेकर भ्रम की स्थिति में हैं। वे इस सिद्धांत के पक्ष में मेरे तर्क की सीधे कोई आलोचना नहीं करते, लेकिन शैक्षिक समानता को लेकर मेरे समग्र विचार में उन्हें दो समस्याएं नजर आती हैं -

1. कि मेरे प्रस्ताव परिवारों के लिए 'शिक्षा विरोधी और स्वायत्तता को कमतर करने वाले अनुदानों' को बढ़ावा दे सकते हैं (टूली, 2003, पृ. 437)। यदि हम वास्तव में बच्चों के शैक्षिक भविष्य को माता-पिता के संसाधनों और सम्पन्नता से मुक्त कर पाते हैं तो माता-पिता के पास स्कूल की व्यवस्था में अपने बच्चों के लिए चुनने को कोई विकल्प ही नहीं रह जाएगा।

2. कि 'जितना ज्यादा आप स्कूली व्यवस्था में समानता लाएंगे, परिवार का प्रभाव भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता जाएगा' (टूली, 2003, पृ. 438)। दूसरे शब्दों में कहें तो स्कूलों में शैक्षिक समानता को स्थापित करने के लिए उठाए जाने वाले कदम सीधे-सीधे शैक्षिक असमानता की समस्या को घरों की ओर स्थानांतरित कर देंगे, और इस तरह वे व्यर्थ ही जाएंगे।

पहली आपत्ति काफी दिलचस्प है। तो समस्या यह है। विकल्प का प्रस्ताव माता-पिता की जानकारी और समग्र स्कूली व्यवस्था के फायदों के बीच संबंध की तलाश करता है। इसके पीछे विचार यह है कि माता-पिता को अपने बच्चों के भले-बुरे के बारे में पर्याप्त जानकारी होती है और वे उसे प्राप्त करने के लिए दो रणनीतियों का इस्तेमाल करेंगे। पहला, वे अपने बच्चों को उनके लिए सबसे उपयुक्त स्कूल में भेजेंगे और दूसरे, वे स्कूलों पर दबाव डालेंगे कि उनके बच्चों को बेहतर शिक्षा उपलब्ध हो, और क्योंकि उनके पास स्कूल को छोड़ देने का वास्तविक विकल्प उपलब्ध होगा, इसलिए व्यवस्थापकों को उनकी बात सुननी होगी। यह मान लेना अकारण नहीं होगा कि माता-पिता के यह प्रयास अन्य बच्चों को प्रभावित करेंगे, और जहां तक कोई बात एक बच्चे के लिए बेहतर है वह दूसरे बच्चों के लिए भी अच्छी होनी ही चाहिए, इसलिए सभी को इन प्रयासों का लाभ उठाना चाहिए। लेकिन यदि वास्तव में यह संभव हो पाता है कि बच्चे को प्राप्त होने वाली शिक्षा की गुणवत्ता पूर्णतः माता-पिता की संपन्नता और संसाधनों के प्रभाव से मुक्त हो जाए तो माता-पिता के पास अपने बच्चे के हितों को सुरक्षित करने के लिए प्रयास करने का कोई आधार नहीं रह जाएगा। शैक्षिक समानता को हम जितनी सफलता के साथ स्थापित कर पाते हैं स्कूलों के फायदे के लिए विकल्प को हम उतना ही कम बढ़ावा दे रहे होंगे। इसलिए प्रथमदृष्टया ही किसी भी समानतावादी समाज के लिए यह बहुत विसंगतिपूर्ण बात होगी कि वह समानता पर जोर देने के साथ ही साथ यह भी सोचे की बाजार की व्यवस्था कुशलता लाएगी; क्योंकि बाजार की व्यवस्था अपनी कुशलता के लिए उन व्यक्तियों पर निर्भर होती है जो अपना फायदा देखते हैं।[1]

मेरी किताब, 'स्कूल के विकल्प और सामाजिक न्याय' (2000) में मेरे इस समस्या के विषय में बात न करने के कारण स्पष्ट हैं। मैं अपनी पुस्तक में ही नहीं और नीति को केंद्र में रखकर किए गए अन्य कार्यों में भी यह मान कर चलता हूं कि स्कूलों की गुणवत्ता को माता-पिता के संसाधनों और संपन्नता से पूर्णतः मुक्त रख पाना असंभव है। ऐसी स्थिति में माता-पिता यह जानते हैं कि निश्चय ही स्थिति आधारित लाभ उठाए जा सकते हैं और वे अपनी विकल्प चुनने की दक्षता का लाभ उठा सकते हैं और इस तरह

सिद्धांत रूप में उनके हितों को साधा जा सकता है। इसलिए मेरे समग्र विचार की दृष्टि से यह एक सैद्धांतिक समस्या है, व्यवहारिक नहीं।

लेकिन यह सैद्धांतिक समस्या कितनी गंभीर है? टूली की तुलना में मेरी राय में यह बहुत कम परेशान करने वाली समस्या है क्योंकि शैक्षिक समानता की बात इस अनिवार्यता में निहित है कि लोगों को वे सब भौतिक लाभ मिलने चाहिएं जिनके वे हकदार हैं। जिसका आशय है कि लोगों को उनके प्रयासों के भौतिक प्रतिफल मिलने चाहिएं, लेकिन यदि भौतिक प्रतिफल से आशय आय और संपत्ति से लिया जाता है तो जिस किस्म का अभिभावकत्व वे भोग रहे हैं उस किस्म के प्रतिफल की बात मैं नहीं करता। क्योंकि मैं भौतिक प्रतिफल को एक खास दायरे में प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रतिफल के रूप में देखता हूं, और यदि एक व्यक्ति की उन तक पहुंच अधिक होती है तो उसमें यह निहित है कि अन्यों की पहुंच कम है। लेकिन स्कूली शिक्षा इसके अलावा और भी अनेक किस्म के गैर-प्रतिस्पर्द्धात्मक या कम प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रतिफल अपने साथ लेकर चलती है और मैं जिस आशय में शैक्षिक समानता की बात करता हूं उसके लिए प्रतिबद्ध सभी माता-पिता उन प्रतिफलों को अपने बच्चों लिए प्राप्त करना चाहेंगे। कल्पना कीजिए कि किसी अर्थव्यवस्था में मजदूरी की दर समान निर्धारित की गई है, ताकि सिर्फ प्रयत्न को इनाम मिले, मेरी राय में शैक्षिक समानता भी इसी तरह है। माता-पिता के पास तब भी स्कूल के अधिकारियों पर दबाव बनाने के पर्याप्त आधार होंगे कि वे बच्चों को ज्यादा प्रभावी तरीके से पढ़ना सिखाएं, स्कूल के वातावरण को ज्यादा संज्ञानात्मक बनाएं, वे यह मांग कर सकेंगे कि उनके बच्चे की अमुक प्रतिभा को निखारा जाए, उन पर निगरानी रखी जाए, कक्षा या स्कूल के गलियारों में क्रूर व्यवहार या अनुशासनहीनता करने पर उन्हें सजा दी जाए आदि। अच्छी स्कूली व्यवस्था वह है जहां रहते हुए जीवन समृद्ध होता रहे और जहां आगे भी रोजमर्रा की कमाई करने के साथ-साथ जीवन को भी समृद्ध बनाने की क्षमता को विकसित किया जाए। माता-पिता यह जानते हैं और उनका जानना मात्र ही पर्याप्त है।

पहली आपत्ति के लिए यह अभी सिर्फ आधा जवाब है। मैंने यह बताया है कि स्कूलों में असमान स्थिति आधारित शिक्षा के बिना भी माता-पिता के प्रयासों के लिए काफी गुंजाइश रहती है। लेकिन क्यों यह मान लिया जाए कि यदि इन प्रयासों को बढ़ावा दिया जाता है तो इससे कुशलता बढ़ेगी। दूसरे शब्दों में किसी अभिभावक का अपने बच्चे के निजी हित को ध्यान में रखकर लिया जाने वाला निर्णय अन्य बच्चों के भी हित में होगा। इस प्रतिक्रिया के दो पहलू हैं। पहला, शिक्षा के ज्यादातर निजी हितों के पीछे एक सकारात्मक किस्म का ढांचा होता है। इसलिए कोई भी बच्चा अपने शैक्षिक अनुभवों से अधिकतम अर्जित करेगा, यदि अन्य बच्चे भी अधिकतम अर्जित कर रहे हैं तो। जेन आस्टिन को पढ़ने में मुझे इतना आनंद मिलता था क्योंकि मेरे आस-पास अन्य लोग उस पर चर्चा के लिए मौजूद होते थे और मेरे उत्साह का लाभ उन्हें मिलता था। मेरे अपने बच्चे के सीखने के प्रति लगाव को प्रोत्साहित करना अन्यों को भी उनके सीखने के प्रति लगाव का अनुसरण करने में मदद करेगा। दूसरे, ऐसे बहुत से पहलू जो बाह्य हितों को ध्यान में रखते हुए हमें विकल्पों की अपेक्षा करने के बारे में सोचने को प्रेरित करते हैं उन्हें ही हमें अंतर्निहित हितों की ओर भी प्रेरित करना चाहिए। माता-पिता खराब तरीके से चलने वाले, बेकार, अनुशासनहीनता वाले स्कूल से अपने बच्चों को निकाल कर या उन्हें वहां न भेज कर उन स्कूलों का पक्ष मजबूत करेंगे जहां सीखने की संभावना ज्यादा हो।

अब दूसरी आपत्ति पर विचार करते हैं। टूली यह कहते हैं कि यदि मेरा सरोकार मूलतः शिक्षा के अवसरों को लेकर है तो यह अजीब है कि मैं अपना ध्यान महज स्कूली शिक्षा पर ही केंद्रित करता हूं जबकि मैं यह मानता हूं कि बहुत सारी शिक्षा घर पर होती है और जो अनेक शैक्षिक असमानताओं को जन्म देती है। इसका सामना करने के लिए मेरी रणनीति ऐसी गतिविधियों की परिकल्पना करने की होती है जो किसी अन्य हस्तक्षेप से बची हुई हैं क्योंकि वे परिवार के मूल्यों के केंद्र में हैं, और वह मूल्य शैक्षणिक समानता के मूल्य से भी पहले आता है (कुछ उसी तरह जैसे राउल्स कहते हैं कि उदारता का सिद्धांत अवसरों की समानता के सिद्धांत से पहले आता है।)। इस तरह, उदाहरण के लिए माता-पिता को अपने बच्चों के साथ अपना जीवन जीने की छूट होनी चाहिए, और अपने उत्साह को अपने बच्चों तक संप्रेषित करने की छूट होनी चाहिए लेकिन जैसा कि टूली कहते हैं :

'इस तरह उत्साह का संप्रेषण समाज में अपनी स्थिति बेहतर बनाने के संघर्ष में कम अवसर प्राप्त बच्चों की तुलना में कुछ बच्चों को अतिरिक्त लाभप्रद अवसर प्रदान कर सकता है। जैसे सर्वोच्च अकादमिशियन, वकील या अन्य पेशों में बेहतरीन प्रदर्शन के जैसे अवसर स्वयं उनके (जैसे ब्रिजहाउस) और उनकी तरह के अन्य परिवारों के बच्चों को कहीं अधिक अवसर उपलब्ध होंगे, खासतौर से इसलिए क्योंकि यह माता-पिता अपने बच्चों को जिस तरह का उत्साह प्रदान करते हैं वह उत्साह उन बच्चों को ऐसे अवसर उपलब्ध कराता है जो इस तरह के माता-पिता के बिना बच्चों को नहीं मिल सकते। और यदि स्कूल समान कर दिए जाते हैं तो - कम से कम वे माता-पिता जो श्रेणियों में यकीन रखते हैं - उनके बीच अपने बच्चों

में इस तरह के उत्साह के अधिकतम संचार की महत्वाकांक्षा कहीं ज्यादा बढ़ी-चढ़ी होगी क्योंकि वे स्थिति लाभ प्राप्त करने में अपने बच्चों को अधिकतम संभव अवसर प्रदान करना चाहेंगे (टूली, 2003, पृ. 439)।'

ध्यान दें कि यहां दो नितांत तर्कसंगत, लेकिन अलग-अलग चिंताएं जताई गई हैं। एक तो यह कि यदि हम स्कूलों में समानता ले आते हैं लेकिन माता-पिता के बर्ताव में कोई बदलाव नहीं आता है तो परिवार के प्रभाव ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाएंगे। दूसरा यह कि स्कूलों में समानता ले आने पर माता-पिता इस बात के लिए प्रेरित होंगे कि स्कूल के अलावा समय में बच्चों के सीखने पर परिवार का प्रभाव नजर आए इसके लिए वे प्रयास करेंगे।

इन दोनों ही आपत्तियों पर प्रतिक्रिया करने से पहले मैं शैक्षिक समानता के क्रियान्वयन को पारिवारिक मूल्य की प्राथमिकता किस तरह बाधित करती ह, पर टिप्पणी करना चाहूंगा। शैक्षिक समानता को बढ़ावा देने के लिए उठाया जाने वाला कोई कदम उचित है या नहीं यह तय करने में दो महत्त्वपूर्ण मुद्दों की भूमिका होती है। एक परिवार की संपूर्णता में किस किस्म की प्राथमिकताएं हैं और दूसरा परिवार की संपूर्णता के सिद्धांत का सार क्या है। यहां मेरे पास ज्यादा विस्तार में जाने की गुंजाइश नहीं है, लेकिन परिवार की संपूर्णता को प्राथमिकता देने का एक महत्त्वपूर्ण आधार है, लेकिन जो मनुष्य के विकास की दृष्टि से माता-पिता और बच्चों दोनों के ही लिए हित में है और जो किसी अन्य संस्था के माध्यम से अर्जित नहीं किए जा सकते हैं (ब्रिजहाउस, एनडी)। लेकिन परिवार की संपूर्णता के आदर्श का सार अनेक व्यवहारों और गतिविधियों का समर्थन करता है, जो हम जानते हैं कि असमान फायदा पहुंचाता है और शैक्षणिक समानता को बढ़ावा देने के लिए बहुत प्रयास किए जाने की आवश्यकता को बताता है। इसलिए, उदाहरण के तौर पर, परिवार की संपूर्णता के सिद्धांत के सार की बेहतरीन समझ के साथ उसे बनाए रखते हुए सरकार द्वारा वित्त पोषित अनिवार्य स्कूली शिक्षा; संपन्न वर्गों के लिए निजी स्कूलों पर ऊंचे करों का प्रावधान (या निजी स्कूलों पर पूर्ण प्रतिबंध); कम आय वर्ग वाले बच्चे जिन स्कूलों में जाते हैं उन्हें अतिरिक्त वित्तीय सहायता और बच्चों के लिए सरकारी सहायता पर आधारित स्वास्थ्य तथा दंत सुरक्षा सेवाएं यह सभी उपलब्ध होना नितांत जरूरी है। यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि इनमें से किसी भी वजह से माता-पिता और बच्चों के बीच परस्पर प्रेम और लगाव में कोई कमी आ सकती है, जो किसी भी परिवार का मूलभूत मूल्य है।

अब पहली चिंता के बारे में बात करते हैं। स्कूली व्यवस्था में समानता लाना, माता-पिता के व्यवहार में परिवर्तन न लाया जाए तब भी क्या परिवार को अवसरों में असमानता उत्पन्न करने के स्रोत के रूप में ज्यादा महत्त्वपूर्ण भूमिका में ले आएगा? मुझे ऐसा मानने का कोई कारण नजर नहीं आता। बच्चे के भविष्य पर पारिवारिक पृष्ठभूमि के प्रभाव को हम 'पारिवारिक प्रभाव' कहेंगे। समान स्कूली शिक्षा प्राप्त करते हुए अवसरों की असमानता को बढ़ाने वाले कारणों में परिवार की भूमिका ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाएगी, लेकिन ऐसा सिर्फ इस कारण होगा क्योंकि असमानता को बढ़ावा देने वाले अन्य स्रोत ढह चुके होंगे। परिवार के प्रभाव कम हों तब भी घर में जो कुछ होता है वह पारिवारिक प्रभाव का काफी बड़ा हिस्सा होता है।

लेकिन दूसरी चिंता का क्या? मान लिया जाए कि यह प्रयास माता-पिता को पारिवारिक प्रभाव का इस्तेमाल करने में बढ़ावा देने के अवसर मात्र प्रदान करते हों और विशेष लाभ की स्थिति वाले माता-पिता खासतौर से इसका फायदा उठाते हों। बच्चों की स्कूली शिक्षा पर ज्यादा पैसा खर्च कर उन्हें अनुचित लाभ दिलाने के अवसरों से वंचित होने पर माता-पिता घर में अतिरिक्त प्रयास करने पर टूट पड़ेंगे। इस बारे में अनेक बातें कही जा सकती हैं, लेकिन मैं सबसे महत्त्वपूर्ण बात को सबसे अंत के लिए सुरक्षित रखूंगा। पहला, एक सीमा तक स्कूल के घंटों को बढ़ाने की इजाजत दी जा सकती है (और संभवतः विभिन्न आधारों पर वह अपेक्षित भी हो), ताकि माता-पिता के पारिवारिक प्रभाव के उपयोग के अवसरों को सीमित किया जा सके। दूसरा, मेरी राय में राज्य को इस बात की इजाजत होनी चाहिए कि वह वंचित परिवारों को अपने बच्चों की बेहतर परवरिश के अवसर प्रदान करने के लिए सकारात्मक गतिविधियों का संचालन करे ताकि पारिवारिक प्रभाव का सामना किया जा सके। नियमित प्रसव पूर्व सहायता, बच्चे के पालन-पोषण के बारे में सलाह, हाई स्कूल और उससे आगे की कक्षाओं में अभिभावकत्व का प्रशिक्षण आदि सभी नितांत अनिवार्य प्रतीत होते हैं। तीसरे, एक खास स्थिति के बाद क्योंकि माता-पिता और बच्चे कम समय ही साथ में बिता रहें होंगे इसलिए इन लाभों में कमी आने लगेगी (स्थिति लाभ आदि प्राप्त करने में) और इस तरह पारिवारिक प्रभाव का इस्तेमाल काफी कठिन हो जाएगा। चौथा, यदि जैसा कि जूडिथ हैरिस (1999) कहते हैं कि माता-पिता के व्यवहार से ज्यादा बच्चे के व्यक्तित्व पर पास-पड़ोस का प्रभाव पड़ता है, तो राज्य को चाहिए कि बस्तियों के वर्ग आधारित विभाजन को कमजोर करने के लिए वह मंडलन की रणनीति अपनाएं ताकि पारिवारिक प्रभाव का प्रतिरोध किया जा सके; और मुझे नहीं लगता कि इन रणनीतियों का परिवार के मूल्यों या उदारता के सिद्धांत के साथ कोई प्रतिरोध होगा।

लेकिन व्यवहार में परिवार की समग्रता और शैक्षिक समानता के समाधान का सबसे कारगर तरीका बहुत आसान है। असमानता से बच्चों के शैक्षिक भविष्य - और इस तरह जीवन भर की कमाई- पर पड़ने वाले जिन प्रभावों के बारे में हम जानते हैं उनके आधार पर यह अनुमान कर पाना मुश्किल लगता है कि परिवारों की आय और संपन्नता के बीच मौजूद खाई जैसे फासले के साथ हम किस शैक्षिक समानता को हासिल कर सकते हैं। आय तथा संपत्ति की असमानता को दूर करने के लिए किए जाने वाले प्रयास परिवार की समग्रता को कमतर करके देखने जैसा कुछ नहीं करते : वे सिर्फ इतना करते हैं कि संपन्न माता-पिता के पास अपने बच्चों पर खर्च करने के लिए कुछ पैसा भले ही कम हो जाए, लेकिन अपने बच्चों के साथ बिताने के लिए उनके अपने आप में कोई कमी नहीं लाते। सच तो यह है कि क्योंकि गरीबी किसी भी परिवार के सुचारू ढंग से चलने में बाधा बनती है, और असमानताओं को कम करना इस संस्था के भी हित में ही होगा।

स्कूल के विकल्प और सामाजिक न्याय में शैक्षिक समानता के आधार पर मैंने आय और संपत्ति के समान वितरण के बारे में काफी विस्तार के साथ चर्चा की है : यदि संपत्ति का समान वितरण हो तो माता-पिता के पास शिक्षा या अन्य किसी माध्यम से अपने बच्चों तक पहुंचाने के लिए विशेष आर्थिक लाभ नहीं होंगे। और मैंने भी महसूस किया कि उस परिस्थिति में शैक्षिक समानता और कमजोर ही होगी या कम से कम उसे हासिल करना काफी जटिल हो जाएगा। उस पुस्तक में भी और अन्यत्र भी शिक्षा संबंधी मेरे लेखन में स्कूल के विकल्प के बारे में बात करते हुए परंपरागत रूप से स्वीकार्य शिक्षा नीति पर चर्चा को स्वाभाविक ही काफी महत्त्व मिल जाता है। लेकिन मैं नहीं मानता की अकेली शिक्षा नीति शैक्षिक समानता या ऐसे किसी भी लक्ष्य को हासिल कर सकती है।

क्या संपत्ति का समान वितरण वास्तव में टूली की दूसरी आशंका का समाधान करता है? अब भी उनकी आपत्ति क्यों उचित नहीं प्रतीत होती, जबकि उसे लक्ष्य करने के लिए कोई असमान नतीजे सामने नहीं हैं? यदि बात सिर्फ इतनी ही होती कि अन्यों की तुलना में कोई क्या हासिल करता है, और परिवार अपने बच्चों के नतीजों को फिर भी प्रभावित कर सकते हैं तो फिर संपत्ति का समान वितरण कर देने से कोई मदद मिल सकेगी? बात सिर्फ इतनी भी नहीं है कि पुरस्कारों की सूची में कोई कहां ठहरता है। बात यह भी है कि किसी को मिलने वाले पुरस्कार दूसरों को मिलने वाले पुरस्कारों के कितना निकट हैं; और असमानतावादी समाज की तुलना में एक अधिक समानतावादी समाज में कम से कम सुविधा सम्पन्न बच्चों को मिलने वाले पुरस्कार भी अन्यों से बहुत कम नहीं होंगे। यहां तक कि लोगों को (भौतिक) पुरस्कार सूची में समान स्थान प्राप्त हो भी जाएं तो भी ज्यादा समानतावादी समाज में जोखिम कम होता है। लेकिन यह भी है कि जब आय और संपत्ति का वितरण ज्यादा समान हो, अपने बच्चों तक लाभ पहुंचाने के लिए माता-पिता की क्षमताएं ज्यादा बराबरी की हों, तब किसी एक के बच्चे को ज्यादा लाभ पहुंचाने के अवसर भी कमतर होंगे।

3. बाजार की सीमा

निजीकरण के बारे में टूली के तर्क राज्य के बारे में अत्यधिक नकारात्मक रुख लिए हैं। वे बाजार के बारे में अत्यधिक आशावाद से भी प्रेरित हैं, खासतौर से जब वे लाभ देने वालों के बारे में बात करते हैं। माइकल बारबर की उस शोध परियोजना के बारे में उनकी टिप्पणी पर गौर करें, जो कथित रूप से 'अतिरिक्त संसाधनों के बिना विज्ञान, गणित और अंग्रेजी में छात्रों की उपलब्धियों में सुधार लाने में सफल रहती है' (टूली, 2003, पृ. 443)। बारबर इस बात पर अफसोस जताते हैं कि 'इन प्रभावशाली परिणामों के बावजूद ... . इसका अनुसरण करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कोई पहल नहीं की गई है ..... इसे भाग्य भरोसे नहीं छोड़ा जाना चाहिए (पृ. 443 पर उद्धृत)। 'लेकिन' टूली कहते हैं 'क्या किसी भी अन्य सेवा उद्योग में यह संभव है कि (एक ऐसे बाजार में जहां चीजों को 'भाग्य भरोसे छोड़ दिया गया हो') यदि एक व्यवसाय यह पाता है कि वह संसाधनों में बिना कोई बढोत्तरी किए 300 प्रतिशत तक उत्पादकता बढ़ा सकता है, अन्य व्यवसाय उस दिशा में कोई पहल भी नहीं करेंगे (पृ. 443)? वे संभवतः इसे नजरअंदाज नहीं करेंगे। लेकिन यदि लाभ के समीकरण की इजाजत दी जाएगी तो मुनाफा कमाने वाली कंपनियों के पास इस बात के लिए पर्याप्त कारण होंगे कि वे पेंटेंट या कॉपीराइट के द्वारा या अपनी गोपनीयता बनाए रख कर अपने उत्पाद की नकल रोकने की कोशिश करें। निश्चय ही सफल कंपनियों का प्रसार होगा और असफल कंपनियां डूब जाएंगी, लेकिन इस सबमें काफी समय लगेगा। साथ ही कंपनियां सफलता दिलाने वाले प्रयासों की नकल भी करेंगी। लेकिन इसमें भी समय लगेगा। बारबर की बात पर टूली की प्रतिक्रिया तकनीकि दृष्टि से उचित है; बारबर का बिंदु बाजार को खारिज नहीं करता है। लेकिन उन्हें ऐसा प्रभाव भी नहीं देना चाहिए मानो बाजार संक्रमण की कीमत और समय सीमा को भी मिटा देगा। क्योंकि ऐसा नहीं होगा।

पेटेंट के परिणामों की इस उपेक्षा से पता चलता है कि बाजार के प्रति अन्य अनेक उत्साहियों की तरह ही टूली भी बाजार के सुचारू संचालन में राज्य की अदृश्य भूमिका प्रस्तुत करते हैं। उनका यही उत्साह ब्रांड के प्रति भी नजर आता है। वे ब्रांड की खूबियों के बारे में इस तरह बताते हैं:

'एक उदाहरण लें : मान लीजिए कि एक ब्रांड सेफबरीज सुपर मार्केट की एक शाखा से आज खरीददारी की। ब्रिक्सटन शहर के बीच में स्थित इस सुपरमार्केट से मैं पिछले आठ साल से खरीददारी कर रहा हूं, और अब मैं नॉर्थंबरलैंड स्थित उसी ब्रांड के सुपर मार्केट से खरीददारी करता हूं और मैं पाता हूं कि खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में दोनों जगह में कोई फर्क नहीं है। जबकि स्कूलों के मामले में स्थिति बिल्कुल इसके उलट है। जिन बच्चों के माता-पिता इन ब्रांड शृंखलाओं से खरीददारी करते हैं वे आश्वस्त होते हैं कि यह सुपर मार्केट कभी डूबेंगे नहीं.....(पृ. 445)।'

वास्तव में ब्रांड के कई फायदे हैं। लेकिन टूली ने ब्रांड के बेहतरीन उदाहरण ब्रिटेन के सुपर बाजारों को चुना है। ब्रांड वहीं जाते हैं जहां जाना फायदेमंद होता है, वे वहां नहीं जाते जहां फायदा नहीं होता हो। इसलिए ब्रिटेन में जहां आबादी का घनत्व ज्यादा है, परिवहन की सुविधाएं अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं और शहर सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से मिले-जुले हैं, वहां बेहतरीन सुपर बाजार सब की सेवा के लिए तत्पर हैं। इसके विपरीत इसके निकृष्ट उदाहरण लॉस एंजिल्स भी मौजूद है। राल्फ्स, सेफवे और वॉन्स दक्षिण लॉस एंजिल्स से पूरी तरह नदारद हैं, और अपेक्षाकृत महंगा और गुणवत्ता में कमतर बॉयूज एंड जोंस वहां उस खालीपन को भरता है। कारण अनेक हो सकते हैं, बीमा की ऊंची दरें, अपराध दर का अधिक होना और निम्न आय आदि। परिवहन की सुविधाएं तथा खास सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां उपलब्ध कराए जाने पर पूर्ण निजीकरण की नीति के तहत स्कूल लॉस एंजिल्स में भी सुपर मार्केट की परिपाटी का अनुसरण कर सकते हैं।

इस एतराज पर दो स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं हैं। पहला, अपराध दर को कम करना और एक समुदाय के रूप में आर्थिक दृष्टि से स्वयं को सुदृढ़ करने की जिम्मेदारी सौंपना। यदि सुपर मार्केट की गुणवत्ता में असमानता के पीछे यही कारण हों और उन्हें दूर करने की दिशा में यह उपयुक्त कदम हों तब भी स्कूलों के मामले में यह उचित प्रतीत नहीं होते : बच्चों को वे जिस समुदाय के बीच बड़े हुए हैं उसके गुणावगुणों के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता और न ही उनसे उसमें सुधार लाने की अपेक्षा की जा सकती है। दूसरी प्रतिक्रिया सभी चीजों के पूर्ण निजीकरण की हो सकती है, ताकि स्कूलों के निजीकरण के साथ ही साथ स्कूलों से संबंधित सभी करों का भी पुनः भुगतान प्राप्त किया जा सके। इससे ब्रांडिंग की समस्या का हल तो नहीं होगा - ब्रांडों को नियमों की जरूरत होती है - लेकिन शायद यह कुछ हद तक असमानता की समस्या को हल कर सके। यह हमें पहले खंड में तलाशी गई संभावना की ओर लौटाता है कि यथास्थिति की बजाय यदि राज्य वित्तीय सहायता प्रदान करने और प्रबंधन से स्वयं को पूर्णतः पीछे हटा लेता है तो स्कूल ज्यादा समानता आधारित होंगे। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि हालांकि यह सही है फिर भी यह राज्य विशेष के संदर्भ में यथास्थिति की गुणवत्ता पर भी निर्भर करता है। खासतौर से लॉस एंजिल्स के मामले में यह संभव है कि राज्य वित्तीय सहायता प्रदान करने और प्रबंधन से स्वयं को पीछे हटा ले और यदि इसके साथ जुड़े कराधान से भी पीछे हट जाए तो वर्तमान में जारी स्कूली व्यवस्था की बजाय ज्यादा समानता आधारित स्कूली व्यवस्था संभव हो सकती है (कम से कम यदि लॉस एंजिल्स के समूचे मेट्रोपोलिटन इलाके को शामिल करते हुए ऐसा किया जाता है तो)। लेकिन अमेरिका के ही अन्य हिस्सों में ऐसा नहीं हो सकता और इंग्लैण्ड में तो हो ही नहीं सकता। निश्चय ही यह प्रश्न मूलतः अनुभवाश्रित है और इसका सही लेखा-जोखा तैयार करने के लिए एक अर्थशास्त्री की जरूरत होगी। लेकिन यदि आंशिक निजीकरण भी लॉस एंजिल्स में हालात में सुधार लाता है तो भी उसमें यह निहित नहीं है कि व्यापक पैमाने पर निजीकरण किया जाए।

ब्रांडिंग और कठिन बजटीय चुनौतियों का सामना करने वाले स्कूलों की वांछनीयता को लेकर टूली और मेरे बीच की सहमति पर एक अंतिम टिप्पणी (टूली, 2003, पृ. 443-444)। कठिन बजटीय चुनौतियां असफल स्कूलों को बंद करने के निर्णय को उन नौकरशाहों के हाथ में नहीं छूटने देंगी जिन्हें गैर बजटीय दबावों का सामना करना पड़ता है और जिनके चलते वे असफल स्कूलों को चालू रखने के लिए प्रयत्नशील नजर आते हैं बल्कि इन चुनौतियों के चलते ऐसे स्कूल स्वतः बंद होने के लिए मजबूर होंगे। हालांकि ब्रांडों, उनकी खूबियों और उनकी संभावित उपस्थिति के संबंध में टूली की टिप्पणी, ने दो कारणों से मुझे यह सोचने पर मजबूर किया कि निजी स्कूलों के लिए भी बजटीय चुनौतियों का सामना करना कितना व्यवहारिक होगा। ब्रांड एक साथ अनेक स्कूलों का संचालन करेंगे, और अनेक बार ब्रांड की साख बचाए रखने के लिए उन्हें उन स्कूलों को भी चलाए रखना पड़ेगा जो अन्यथा जारी रहने की स्थिति में नहीं होंगे, जैसा कि अन्य क्षेत्रों में भी ब्रांड आय देने वाली इकाइयों पर बजटीय सीमाएं लागू नहीं करते। उदाहरण के लिए, ब्रांड उपेक्षा के आरोपों से बचने के लिए कई बार उन स्कूलों को भी चालू रखने के लिए विवश होंगे जिनसे उन्हें लाभ न मिल रहा हो (संभवतः यह अच्छा हो, मैं नहीं जानता)। लेकिन उससे कहीं महत्त्वपूर्ण सवाल व्यावहारिकता का है। हाल ही ब्रिटिश रेल्वे नेटवर्क के वित्त प्रबंधन में हुई गड़बड़ियों को जिसने भी करीब से देखा है वे जानते हैं कि सरकारों के लिए अपेक्षाकृत अनियमित बाजारों में भी किसी कंपनी

को मुश्किल समय में उबारने से पीछे हटना बहुत कठिन होता है, खासतौर से यदि वह बाजार ऐसी सेवाएं प्रदान करता है जो अनिवार्य मानी जाती हैं। कंपनियां यह जानती हैं, इसलिए वे अक्सर ऐसे व्यवहार करती हैं मानो उनके सामने कोई आर्थिक सीमा हो ही नहीं (क्योंकि वे मानती हैं कि उनके लिए कोई सीमा नहीं है)। छोटे व्यवसायों के साथ यह कम गंभीर स्थिति है, इसलिए यदि प्रत्येक स्कूल को एक व्यक्तिगत ठेका दिया जाता है तो समस्या नहीं होगी। लेकिन, यदि हम पूर्ण निजीकरण की ओर जाते हैं जिसका कि टूली पक्ष लेते हैं, तब बड़ी कंपनियां (ब्रांड) संभवतः इसी आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ेंगी कि कोई भी कठिनाई आने पर उन्हें उबार लिया जाएगा।

4. निष्कर्ष

अधिकांश विकासशील देशों में पूर्ण निजीकरण के साथ क्या समस्या आएगी? यह वंचितों (और अनेक लोग को अत्यधिक वंचना का जीवन जी रहे हैं) के लिए शैक्षिक भविष्य की संभावनाओं को वर्तमान से भी ज्यादा कमजोर करेगा, और इस तरह शैक्षिक भविष्य को पूर्णतः माता-पिता के संसाधनों पर निर्भर छोड़कर सामाजिक सहयोग के असमान वितरण से मिलने वाले लाभों तक उनकी पहुंच को समाप्त ही कर देगा। मेरा मानना है कि अनेक बच्चे, खासतौर से कम सुविधा प्राप्त परिवारों के कम प्रतिभाशाली बच्चे तो उपयुक्त शिक्षा हासिल ही नहीं कर पाएंगे जो कि उन्हें मिलनी चाहिए और ऐसा सोचने के अनेक कारण मौजूद हैं। निजी प्रबंधनों के लिए भी कुछ उपयुक्त भूमिकाएं हो सकती हैं और मैं ब्रिटेन और अमेरिका में भी निजी प्रबंधन के प्रसार के लिए कुछ सामाजिक दृष्टि से न्याय संगत प्रस्तावों की कल्पना कर सकता हूं। लेकिन विकल्प और निजीकरण दो अलग बातें हैं। और आंशिक तौर पर निजीकरण के न्यायसंगत परिणामों के आधार पर निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि पूर्ण निजीकरण भी न्यायसंगत ही होगा। किसी भी तर्क संगत ढंग से बेहतर संचालित और उदार लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में न्याय के लिए सामान्यतः स्कूलों के लिए व्यापक सरकारी कोष और नियमों की आवश्यकता होती है। पूर्ण निजीकरण गलत ही होगा। ◆

अनुवाद : देवयानी

कविता

स्कूल से भागा हुआ

स्कूल से भागा हुआ लड़का
भागकर खुश नहीं है
वह कहां जाए ! घर के सिवा

स्कूल पहली जगह है जो
बाध्य करती है
सारी इच्छाओं के विरूद्ध सख्त इमारत
की तरह लगती है।

भागे हुए लड़कों को
सब-कुछ पराया
वह चाहता है कि या तो स्कूल में मन लगे
या भागने का मलाल न रहे

घण्टा बजा
कुछ लड़के बरामदे में दिखे दूर
कुछ दौड़ते हुए
पेशाबघर में घुसे
उसे लगा
वे सब लाड़ले हैं सुधरे हुए
उन्हें सब प्यार करेंगे।

फिर वह
शहर के अनजान गर्म इलाके में
बंद दरवाजों के बाहर पड़ी
धूल में चलता रहा
जहां प्यास बहुत थी
जहां पेड़ नहीं थे
जहां दूर एक स्कूल था
जहां से
बच्चों के एक साथ रटने की आवाज
आ रही थी।

सुनकर
उसके चेहरे पर
ऐसा एक भाव आया
कि आगे चलकर
उसका चेहरा बहुत बदल जाएगा। ◆

नवीन सागर
'हर घर से गायब' से साभार